ournal
0

IF)

ISSN 2319-8648

Impact Factor : 2.143

t Global Reviewer

nal Refereed Research Journal Registered & Recognized
ucation For All Subjects & All Languages

Special Issue

I, Vol I 10th February 2018

CURRENT GLOBAL REVIEWER

Editor in Chief

Mr.Arun B. Godam

v.rjournals.co.in

Index

Sr.	Article Title	Author	Page No.
	Hindi		
1	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में प्रो.शंभुनाथ तिवारी का काव्य	प्राचार्य डॉ.रजनी शिखरे, संतोष नागरे	1
2	भूमंडलीकरण : साहित्य और समाज	डॉ. आर. गोपालकृष्णन	5
3	बस्तियों से बाहर (कविता संग्रह) में चित्रित दलित चेतना	इबरार खान	9
4	ग़ज़ल साहित्य में वैश्विक समस्या - दहशतवाद की अभिव्यक्ति	प्रा. डॉ. बंग नरसिंगदास ओमप्रकाश	12
5	वैश्वीकरण के दौर में प्रभा खेतान के उपन्यासों की नारी चेतना	प्रा. डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात	15
6	"वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में नक्सलबाडी कविता"	ड़ॉ.आबासाहेब राठोड	17
7	समकालीन हिंदी कविता : बाजार से बाजारवाद तक	डॉ. के.बी. गंगणे	20
8	भूम्भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास साहित्य : डॉ. काशीनाथ सिंह रचित उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' के विशेष संदर्भ में	डॉ० विनोदकुमार विलासराव वायचळ 'वेदार्य	22
9	जनसंचार माध्यम और भाषा स्वरुप डॉ.नवनाथ गाड़ेकर	डॉ.नवनाथ गाड़ेकर	25
10	साहित्य और समाज बाजारवाद के चक्र में पिसता आदिवासी	डॉ.राजश्री भामरे	27
11	वैश्वीकरण में नारी के प्रश्न	प्रा. डॉ.आहेर एस.ई.	29
12	वैश्विकरण : विभ्रम और यथार्थ	डॉ. बी. आर. नळे	31
13	हिंदी कविता में बाजारवाद	डॉ. मनोहर जमधाडे	35
14	वैश्वीकरण : साहित्य और समाज (कविता के संदर्भ सें)	प्रा. पाटोळे अनिता किसन	37
15	जागतिकीकरण के दौर में हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध	डॉ.काकडे परमेश्वर जिजाराव	40

ISSN : 2319 – 8648 CURRENT GLOBAL REVIEWER
Impact Factor : 2.143 SPECIAL ISSUE Issue I , Vol I , 10th Feb. 2018

समकालीन हिंदी कविता : बाजार से बाजारवाद तक

डॉ. के.बी. गंगणे
हिंदी विभागाध्यक्ष, सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगांव जि.बीड

----------(07)----------

पूरी दुनिया एक हो । मनुष्य एक जाति है । भूमंडल के एक होने की आकांक्षा का संबंध मनुष्य के सांस्कृतिक महा - स्वप्न से है । पूरी वसुधा को कुटुंब मानने और बनाने का उदात्त भाव मनुष्य के अन्दर सदा से रहा है। भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुंबकम्' को एक आदर्श माना था पूरा विश्व सभी भेदों को त्यागकर एक परिवार की तरह होगा । भूमंडलीकरण के समर्थक भी यही कहते हैं कि वैज्ञानिक प्रगतिं और सूचना क्रान्ति के परिणाम स्वरूप संपूर्ण विश्व एक 'ग्राम' बन गया है। 'वैश्वीकरण' का आदर्श रूप भले ही मोहक हो, लेकिन उसका यथार्थ रूप वह नहीं है आज वैश्वीकरण 'नव पूँजीवाद' का मोहक नामकरण मात्र है। इसीलिए यह मानवता का विस्तार नहीं, नवपूँजीवादी सम्राज्यवाद है। वैश्वीकरण से तात्पर्य आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण है। आर्थिक उदारीकरण से सीधा तात्पर्य है 'मुक्त बाजार' मुक्त अर्थ व्यवस्था ।

'भूमंडलीकरण' अपने मूलार्थ में 'भूमंडीकरण' है। तात्पर्य यह है कि दुनिया और कुछ नहीं सिर्फ 'खरीदने-बेचने' की जगह है। बाजारवाद के चश्मे से दुनिया में वे लोग फालतू के बोझ हैं जो 'बाजार से गुजरते हैं मगर खरीददार नहीं होते हैं या दुनिया में रहते हैं मगर दुनिया के तलबगार नहीं होते हैं। भूमण्डलीकरण की प्रकृति को समझते हुए एजाज अहमद ने अपने व्याख्यान में कहा था कि - "इस बीच भूमण्डलीकरण बाजार को एक कर रहा है और मनुष्यों को बाँट रहा है, क्योंकी भूमण्डलीय बाजार के लक्ष्यों के लिए मनुष्यों को सर्वोत्तम इस्तेमाल तभी किया जा सकता है, मगर वे एक-दूसरे से जुडे लोगों की तरह नहीं, बल्की व्यक्तिगत उपभोक्ता की तरह व्यवहार करें ।"[१]
(एजाज अहमद, संस्कृति और भूमण्डलीकरण, आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-६ पृष्ठ १३)

भूमण्डलीकरण के इस युग में बाजारवाद के बढते हुए वर्चस्व को समकालीन कवियों ने अपने कविता में अभिव्यक्त किया है। बाजारवादी व्यवस्थाने मानवीय जीवन किस तरह परिवर्तन कर दिया है। और समाज में अमरिकी उपभोक्तावादी संस्कृति का प्राबल्य बढता जा रहा है। सम्बन्धों के बीच उगते बाजार को लेकर मंगलेश डबराल और कुमार अंबुज जैसे कवियों ने भी कविताएँ लिखी है । अपनी प्रकृति भूलकर बाजार के प्रलोभन में फँसते मनुष्यों को इन कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है । कुमार अंबुज की कविता में यह रूप है -

"जहाँ फफूँद भी नहीं उग सकती
जहाँ वायरस के लिए भी सेंध लगाना नामुमकिन
देखते हैं एक दिन वहाँ खडी हो जाती दुकान
आँखो में, हृदय में, आत्मा के बरामदे में
एक दिन दिखता है दुकान का साइनबोर्ड

आत्मीयता एक मद की तरह चमकती है सूची में "[२]
(कुमार अंबुज, एक बार फिर, वसुधा अंक-४७ पृ.८३)

हिन्दी में ऐसी कविताएँ भी कम नहीं है जिनमें मनुष्य की इच्छाओं पर बाजार संस्कृति के वर्चस्व का चित्रण है। निलय उपाध्याय की 'मुझे पछाड दिया' कविता को उदाहरण के लिए जा सकता है । नीम के गुणवाली साबुन की टिकीया से छत्तीस साल से सम्बन्ध था, लेकिन बाजार के प्रलोभन में उसे न लाकर ऐसी साबुन की टिकीया खरीदी जाती है जिसे दो खरीदने पर एक अतिरिक्त दिया जाता था -

"मैं तो गया था उसी की तलाश में
कम्बख्त दुकानदार ने कहा - इसे ले जाइए
मिल जाएगी दो के दाम में तीन "[३]
(निलय उपाध्याय, अलोचना , सहस्त्राब्दी अंक - ९, पृष्ठ ४१)

Assistant Professor
Sundarrao Solanke Mahavidyalaya,
Majalgaon Dist.Beed (M.S.)

137

nned by CamScanner

ISSN : 2319 – 8648 Impact Factor : 2.143 **CURRENT GLOBAL REVIEWER** SPECIAL ISSUE Issue I, Vol I, 10th Feb. 2018

भूमंडलीकरण के दौर में बाजार स्त्री को जगह देता है, चमकाता है। आज स्त्री की चाल-हँसी, रूप-रंग, दाँत-बाल सब खपत के माल है। बाजारवाद में नारी में मानवतावाद की अपेक्षा वे गुण ज्यादा महत्वपूर्ण है जो बाजार की दृष्टि में महत्वपूर्ण है, आज वह वात्सल्य की मूर्ति नहीं बल्कि विज्ञापन की मॉडेल है। उसके चेहरे पर के हाव-भाव, हास्य सब कृत्रिम है बाजारवादी संस्कृति में वह सब उसे करना पड़ता है। वह जितना ज्यादा खरीद और बेच सकता है, वह उतना ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्रय-विक्रय के साथ बाजार एक जीवन शैली भी है। अमेरिका की उपभोक्तावादी संस्कृति पूरे विश्व में फैल रही है । बाजारवाद मनुष्य को मनुष्य के तरह नहीं यंत्र की तरह देखता है। पश्चिमी बाजार की नैतिकता है। स्त्री मनुष्य नही, वस्तु है। वस्तुओं को जिस तरह किसी तरह के दुख-दर्द से कोई सरोकार नहीं होता उसी तरह मनुष्यों को भी न हो। मानो वह चलता फिरता रोबोट हो इसी भाव को मंगलेश डबराल चित्रित करते हैं -

"अमेरिका में रोना मना है
उदास होना मना है
x x x x
कि आलीशान दुकान में सामान बेचती
एक दुबली सी लडकी
जो कुछ सोचती हुई-सी बैठी थी
एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कुराना भूल गई
शाम को उसे नौकरी से अलग कर दिया गया।"

यह तो सच है कि बाजार ने नारी को चार दीवारी से मुक्ति दिलायी है। किन्तु यह आजादी 'नारी हित' के लिए न होकर 'बाजार हित' के लिए है। विनय विश्वास के शब्दों में - "बाजार ने स्त्री के शरीर पर से नहीं उसकी चेतना, उसके मन पर से भी वस्त्र उतारे हैं। एक समय तक घूँघट और बुर्के भी तार-तार किये है। लज्जा, संकोच, हीनता-बोध आदि बंधनो के वर्चस्व से औरत को बाहर भी निकाला है। इसके कारण इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि बाजार कोई समाज सुधारक है। स्त्रीहित का मसीहा है।........... बाजार स्त्री को आवरणों से मुक्त करता है, उसका अबाध इस्तेमाल करने क़े लिए "[४] (डॉ.प्रमोद कोवप्रत, साहित्य का सामयिक सरोकार (लेख - वर्तमान कविता में भूमण्डलीकरण के दौर की नारी- डॉ. जयरामन पी.एन.) पृष्ठ ४९)

बाजार - केन्द्रित संस्कृति ने हमारी गतीशील संस्कृति को ध्वंसित किया है। हमारी गतिशील संस्कृति प्रथमतः मूल्यापेक्षी। मनुष्य एवं मनुष्येतर जीवन और व्यवस्था को उसमें प्रमुख स्थान प्राप्त है। परंतु बाजार केन्द्रित संस्कृति ने अपने विकल्प को सुस्थापित करने हेतु मनुष्यधर्मी दृष्टि के स्थान पर मनुष्य विरोधी दृष्टि को विकसित किया है। पर उसका बाह्य रूप मनुष्य विरोधी नहीं है । बाजार-केन्द्रित नई संस्कृति ने सिर्फ वाणिज्य के क्षेत्र को ही नही बल्की शिक्षा, समाज कल्याण, स्वास्थ और विज्ञान को भी प्रभावित किया है। इन सभी क्षेत्रों के कार्यकलाप बाहरी शक्तीयों के इशारे पर चल रहे है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समकालीन कवियों ने भूमंडलीकरण के युग में बाजारवाद के पदचाप को सुना और काव्य का विषय बनाया। हिंदी कविता ने यथार्थवादी प्रकृति के कारण पूँजीवादी संस्कृति के विरोध के रूप में स्वयं को प्रस्थापित किया। निरंकुश सत्ता और बाजारवाद की चमक-दमक में, भूमण्डलीकरण की आँधी में हिंदी कवता का दुर्ग ध्वस्त नहीं होता भले उसमें दरारें पड गई हों। हिंदी कविता भूमण्डलीकरण एवं बाजारवाद के विशाल महाकाय के सामने चुनौती की मुद्रा में है।

संदर्भ -

१) एजाज अहमद, संस्कृति और भूमण्डलीकरण, आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-६ पृष्ठ १३
२) कुमार अंबुज, एक बार फिर, वसुधा अंक-४७ पृ.८३
३) विनय उपाध्याय, आलोचना , सहस्त्राब्दी अंक - ९, पृष्ठ ४१
४) डॉ. प्रमोद कोवप्रत, साहित्य का सामयिक सरोकार (लेख - वर्तमान कविता में भूमण्डलीकरण के दौर की नारी- डॉ. जयरामन पी.एन.) पृष्ठ ४९.

Assistant Professor
Majalgaon Dist.Beed.(M.S)
nned by CamScanner

UGC Approved
Refereed Journal
UGC
Jr.No.43053

ISSN 2394-5303

International Multidisciplinary Research Journal
Issue-31, Vol-04, July 2017

Printing Area

Editor
Dr.Bapu G.Gholap

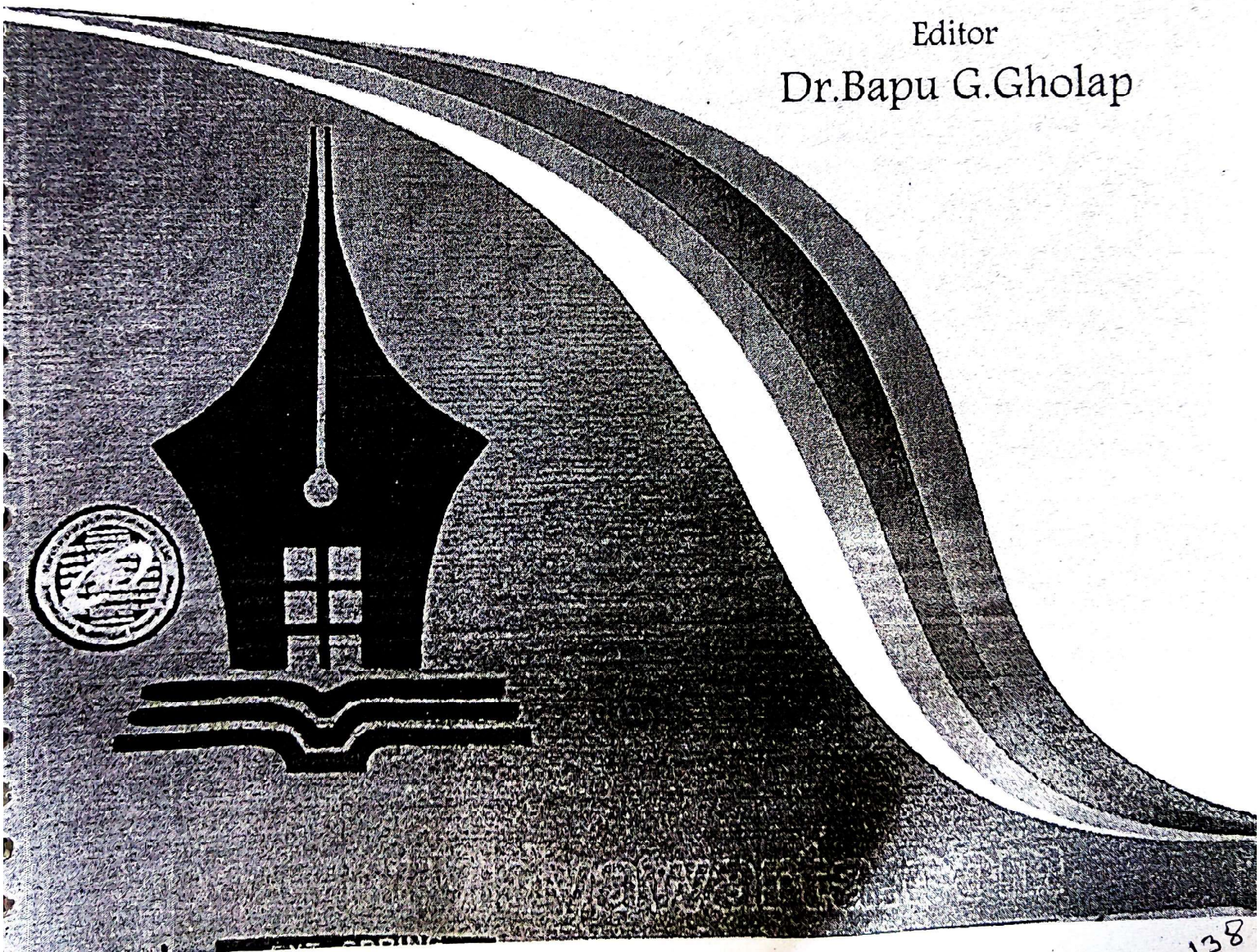

Scanned by CamScanner

27) आचार्य श्री आनंदऋषिजी - एक थोर साहित्यिक
श्रीम. सीमाताई नवनाथ पालवे, जि.अहमदनगर || 112

28) इकतारे की आंख: मिथकीय नाट्य प्रस्तुति
डॉ. के. बी. गंगणे, बीड || 115

29) उन्नीसवीं सदी के धार्मिक आंदोलन और राष्ट्रीय साहित्य
डॉ. ओम प्रकाश नारायण द्विवेदी, जम्मू || 116

30) अजनबी जज़ीरा – विध्वंस का यथार्थ
डॉ. निशा जम्वाल, जम्मू || 121

31) डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में अभिव्यक्त पारिवारिक जीवन
डॉ. नानासाहेब जावळे, पुणे || 123

32) भारत में पुस्तकालय अधिनियम की उपादेयता
डॉ. शिवाकान्त मिश्रा, कु. नन्दिनी मांझी || 128

33) वेदों में श्रमण संस्कृति के पुरोधा ऋषभदेव
डॉ. संगीता मेहता, धार (म.प्र.) || 131

34) भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय राजनैतिक दलों का राष्ट्रीय राजनैतिक दलों से संबंध
डॉ. अरूणिमा नामदेव, जबलपुर || 134

35) छिंदवाड़ा जिले के औद्योगिक विकास की स्थिति एवं संरचना का एक समीक्षात्मक अध्ययन
विजयश्री बागड़े, भोपाल, म.प्र. || 137

36) डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के साहित्य में सामाजिक जीवन–मूल्यों के आदर्श
आशाराम रहड़वे, बैतुल (म.प्र.) || 140

37) भारतीय शेयर बाजार के अंतर्गत मुंबईस्टॉक एक्सचेंज एवं नेशनल स्टॉक एक्सचेंज का अध्ययन
डॉ. अरविंद शेंडे, सौ. देवयानी आनंद आपटे, नागपूर || 143

38) वैश्वीकरण की नीति एवं विकास (विदेश प्रत्यक्ष निवेश हेतु भारत सरकार की नीतियों के विशेष संदर्भ में)
डॉ. कविता भदौरिया, बड़वानी, म.प्र. || 149

www.vidyawarta.com/03 | http://www.printingarea.blogspot.com

Scanned by CamScanner

ISSN: 2394 5303 | Impact Factor 4.002(IIJIF) | Printing Area International Research journal | July 2017 Issue-31, Vol-04 | 0115

28

इकतारे की आंख: मिथकीय नाट्य प्रस्तुति

डॉ. के. बी. गंगणे
हिंदी विभागाध्यक्ष,
सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय,
माजलगाव जि. बीड

मणि मधुकर व्दारा लिखित नाटक 'इकतारे की आँख' ऐतिहासिक मिथक पर आधारित है, लेकिन इसका भी उद्देश न तो ऐतिहासिक घटना का मंथन है और न ही ऐतिहासिक चरित्रों की प्रस्तुति. कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व के व्दारा वर्तमान समय में भी व्याप्त धर्मान्धता एवम् बाहयाचारों के प्रबल विरोध को प्रस्तुत किया है. इस प्रकार कबीर मात्र मध्यकालीन संत और कवि ही नही बल्कि निरीह समाज का शोषण करणे वाली विषम और विसंगत व्यवस्था के खिलाफ संघर्षरत सक्रिय चेतना का प्रतीक है. मणि मधुकर ने कबीर के जीवन और परिवेश को एक सूत्र मे गुंथते हुए समकालीन प्रश्नों पर सुक्ष्म दृष्टिपात किया है. यह नाटक संवेदना और संरचना के दुहरे स्तरों पर चलता हुआ कबीर के व्यक्तित्व का पूरे युग की अभिव्यक्ति तो बनाता ही है उस. काल के अन्तर्विरोधों को हमारी आज की विडम्बनाओं से भी जोडता है. ''मणि मधुकर के अन्य नाटकों की तरह एब्सर्ड और लोक रंग तत्वों से निर्मित एक लचीले फॉर्म की रचना है. इसमें रचनाकार का उद्देश संत फक्कड और क्रांतिकारी कवि कबीर तथा उसके परिवेश के बहाने से आज के जीवन और जगत की विसंगतियों तथा विडम्बनाओ का पर्दाफाश करना है''[1]

नाटककार मणि मधुकर ने इकतारे की आँख में एक ऐसे धार्मिक परिवेश को प्रस्तुत किया है जो स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार से भरा हुआ था. कबीर इसी तिमिराच्छत्र वातावरण में अपना ज्ञान-दीप लेकर उपस्थित हुए थे . इस युग में शासकों की तलवार सदेव गरीब व दीन-हीन जनता के रक्त की प्यासी रहती थी. इसी अन्याय एवम् अत्याचार के कारण तत्कालीन समाज में आचार-विचार, संस्कृति, धर्म , भाषा को लेकर खाइं दिनों-दिन बढती जा रही थी. कबीर ने बाहयाचारों और ब्राह्मणवादी प्रवृति के जडोन्मूलन का बीडा उठाया. इकतारे की आँख में प्रयुक्त विभिन्न संवादो मे हिंदू - समाज में व्याप्त विभिन्न पंथों इत्यादि की चर्चा है. जिसमे धर्म के नाम पर ही मनुष्य - मनुष्य में अंतर हो जाता है. उंच-नीच, छुआ - छूत हिंदू धर्म के विनाश का कारण है. भगवान ने सबको एक जैसा बनाया है . तो फिर मनुष्य - मनुष्य में भेदभाव क्यों -

''तीसरा : कौन जात हो ?

पहला : रैदास नाम है मेरा. जात मानो तो , चमार कह लो.

दूसरा : (एकदम बिदककर) छि :- छि यह तो शूद्दर है, शूद्दर !''[2]

मणि मधुकर ने 'इकतारे की आंख' नाटक में कबीर के माध्यम से व्यक्तिपूजा का प्रश्न उठाया है .

व्यक्तिपूजा अथवा व्यक्ति के नाम पर किसी पंथ अथवा संप्रदाय की स्थापना की निंदा की है . कबीरदास मानवता को ही सबसे बडा पंथ मानते थे. नाटक में भी वे संत रैदास के सामने यही भाव प्रकट करते हैं ''कबीर का कोई बंस नही कोई पंथ नहीं , रैदास! इसे अच्छी तरह जान लो. अगर कोई असल आदमी है तो आदमियत का रास्ता जानता ही है. उस अलग से नाम देना, उसका बंटवारा करना कतई गलत है.''[3] कबीर अपने युग में विभिन्न वादों तथा पंथों की अंधानुकरण प्रवृत्ति से जुझते रहे, किंतु यह उस युग का ही नहीं वर्तमान युग का भी सत्य है कि लोग सही रास्तों से भटके हुए हैं और भिन्न -भिन्न वादों अथवा पंथों की संकीर्णता में जकडे हुए हैं. नाटककार ने उक्त नाटक के कथ्य को समसामयिक संदर्भ में भली-भांति व्याख्यायित किया है . आज भी कुंभमेला के समय विभिन्न पंथों, संप्रदायों के बीच अधिकार, पहले स्नान का मान को लेकर साधु - संन्यासियों के बीच दंगल होती है.

कबीरदास सदियों से दबी कुचली , दीन-हीन जातियों की सोई हुई चेतना को जगाने के लिए ही उतनी कठोर व लगने वाली भाषा बोलते थे. वह स्वातंत्र्यता, समानता, बन्धुत्व व न्याय पर सबका समान अधिकार मानते थे. इसीलिए वे धर्म के उन ठेकेदारों पर जमकर बरसते है, जो व्यभिचार एवम् भ्रष्टाचार के पुतले होकर आम जनता का शोषण करते है. कबीर इन शोषित जनता को जाग्रत कर क्रांति के लिए तैयार करते है. कबीर का यह साहसिक प्रयास दलित वर्ग के अस्तित्व की रक्षा के लिए सराहनीय कार्य था. दलित पीडित शोषित एवम् सोई हुई चेतना को जगाना ही उनका लक्ष्य था - ''जो लोग अन्याय के तले दबते - पिसते धूल हो गए हैं उन्हे अब आंधी बनकर उपर उठना होगा''[4] कबीर की क्रांतिकारी सामाजिक चेतना का प्रभाव वर्तमान दलित समाज पर पडा है. कबीर शाहु, फुले, आंबेडकर विचारधारा से प्रभावित होकर दलित, शोषित, पीडित

Assistant Professor Sunderrao Solanke Mahavidyalaya

137

समाज का एक बहुत बडा वर्ग इन सामाजिक बुराईयों के विरोध में उठ खडा हुआ. आज के इस विषम परिवेश में कबीर की इसी ज्ञानमयी चेतना की आवश्यकता है. कबीर का संघर्ष मिथ्या आडंबरो छुआछूत जाति-पांति, ऊँच नीच के भेदभाव को मिटाने के लिए था. जातिवादी व्यवस्था को लेकर कबीर का यह संवाद आज भी कितना प्रासंगिक है- ''छोटी जात, बडी जात! पता नही, यह दीवार कब टूटेगी ?''[5]

कबीर का विरोध किसी धर्म से नहीं था धर्म के नामपर जो बुराईयाँ, आडम्बर, रुढियां अंधविश्वास, शोषण चल रहा था उसका खुलकर विरोध कबीर ने अपने वाणी से किया. पानी में रहकर मगर से बैर उन्होंने लिया काशी में रहकर पंडितो को ललकारा शासक मुसलमान होने पर मुल्लाओं को नही छोडा वे न तो मंदिर की पूजा में विश्वास रखते है और न ही मस्जिद की समाज में - ''राम - राम और अल्ला - अल्ला का जाप करने से कुछ नहीं होगा. क्या गुड - गुड बोलते रहने से मुह मीठा हो जाता है ?''[6]

वर्तमान संदर्भो में कबीर की यह जनवादी, मुखर चेतना की प्रासंगिकता ज्यो की त्यों बरकरार है. कबीर की यह चेतना आज के हर संघर्षशील व्यक्ति में दिखाई देती है. आत्मा के सत्य का उध्दार ही कबीर का मुख्य उदेश्य रहा है.

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि इकतारे की आंखं में रुढियों का विरोध एवम् बेकार मान्यता ओं के स्थान पर नए आदर्शा की स्थापना करना कबीर का मुख्य ध्येय था. उन्होंने आंखे मुद कर इंश चिंतन नही किया है. बल्कि अपने परिवेश को जाना, परखा है और उसमें व्याप्त विसंगतियों को मिटाने के लिए संघर्ष भी किया है. इसलिए कबीर की सही पहचान उनके संघर्षो और संघर्षा से जन्मे विचारों में है. जो मध्यकालीन होकर भी हमारे वर्तमान से जुडे हुए है. नाटक में कबीर जैसे युगपुरुष के बहाने आज के देशकाल और उससे संस्पृक्त अनेक ज्वलन्त मुद्दो का जायजा लेता है. तत्कालीन धार्मिक वातावरण और सांप्रदायिक स्थितियों को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वे आज के माहौल से भिन्न नही लगती है.

संदर्भ :-

१. हिंदी रंगकर्म दशा और दिशा - जयदेव तनेजा पृष्ठ - ३६
२. इकतारे की आंख - मणि मुधुकर पृष्ठ - २१ - २२
३. इकतारे की आंख - मणि मुधुकर , ९२
४. इकतारे की आंख - मणि मुधुकर, ६१
५. इकतारे की आंख - मणि मुधुकर, ६२
६. इकतारे की आंख - मणि मुधुकर, ६७

□□□

29

उन्नीसवीं सदी के धार्मिक आंदोलन और राष्ट्रीय साहित्य

डॉ. ओम प्रकाश नारायण द्विवेदी,
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी—विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अधिकांश इतिहासकारों ने भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के उदय के लिए मुख्य श्रेय ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी को दिया है। उनका ऐसा करना कहां तक उचित है? इन धार्मिक आंदोलनों की वास्तविक भूमिका क्या थी? ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज हिन्दू धर्म पर मुख्यत: ईसाई धर्मप्रचारकों के आक्रमण की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुए। ईसाई मिशनरियों का हिंदू धर्म विरोधी प्रचार इतना घृणित था कि ईसाई धर्म का आदर करने वाला राजा राममोहन राय को भी उसका विरोध करना पड़ा था। इन मिशनरियों का आक्रमण हिंदू और इस्लाम दोनों धर्मों पर था, लेकिन बहुमत का धर्म होने के कारण हिंदू धर्म पर प्रहार ज्यादा तेज था। खुद कंपनी की सरकार इन मिशनरियों की हर तरह मदद करती थी। इसके दो उदाहरण लीजिए:

१८४५ में कंपनी सरकार ने 'लेक्स लोकी' कानून पास करना चाहा। इसमें व्यवस्था की गई थी कि किसी हिंदू के ईसाई हो जाने पर भी उसे पैतृक संपत्ति में हिस्सा मिलेगा। यह हिंदू उत्तराधिकार कानून के एकदम खिलाफ था। इसके विरूद्ध इतना प्रबल आंदोलन उठ खड़ा हुआ कि कंपनी सरकार ने इसे रोक रखना ही उचित समझा। इस आंदोलन की एकता और व्यापकता के बारे में 'कलकत्ता क्रिश्चियन एडवोकेट' ने ३१ मई १८४५ को लिखा: ''धर्म सभा, ब्राह्म सभा और तत्वबोधिनी सभा, 'यंग बंगाल' स्वेच्छाचारी

Assistant Professor
Sunderrao Solanke Mahavidyalaya,

ISSN 2320-6263 | UGC APPROVED JOURNAL NO 64395
RNI REGISTRATION NO MAHMUL/2013/49893

RESEARCH ARENA

A MULTI-DISCIPLINARY INTERNATIONAL REFEREED RESEARCH JOURNAL

Vol 5 Issue 11 February 2018

समकालीन हिन्दी पद्य विवेचन

SPECIAL ISSUE NO. 1

संपादक

डॉ. रामचंद्र ज्ञानोबा केदार

सह संपादक

डॉ. प्रकाश बन्सीधर खुळे

Scanned by CamScanner

VISHWABHARATI RESEARCH CENTRE

RESEARCH ARENA
ISSN 2320-6263
Vol 5. Issue 11. Feb 2018. pp. 56-59
Paper received: 01 Feb 2016.
Paper accepted: 16 Feb 2017.
© VISHWABHARATI Research Centre

समकालीन हिंदी कहानी : स्त्री विमर्श के विविध आयाम

डॉ. के. बी. गंगणे

आज साहित्य जगत् में जहाँ भी देखिए, विमर्शों की बाढ– सी आ गई है। मसला चाहे आलोचना का हो या फिर विश्वविद्यालयी शोधकार्य से जुडा हो, उसका सिरा किसी–न–किसी विमर्श, मोटे तौर पर दलित, आदिवासी अथवा स्त्री–विमर्श से जुडा हुआ मिलेगा। अब तो आलम यह है कि चेतना अस्मिता, अध्ययन, विश्लेषन, सबकी जगह विमर्श शब्द चल पडा है। किसी एक पक्ष या वर्ग की ज्यादती जब किसी दूसरे पक्ष या वर्ग पर इस कदर हावी हो जाती है, कि वह शोषण,दमण और अविवेकपूर्ण व्यवहार को अख्तियार कर लेती है तब उस पक्ष से जुडे सभी संदर्भो और प्रक्रिया की जाँच हो जाती है, विर्मश यही जाँच–पडताल करता है। जो नहीं होना चाहिए फिर भी हो रहा है तो उसके कारणों और उससे लिपटे विविध अंत: सूत्रों की पहचान करते हुए उसे व्यवस्थित करना विमर्श द्वारा ही संभव है।

डॉ. के.बी. गंगणे : हिंदी विभागाध्यक्ष, सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगांव जि. बीड

पश्चिमी विचारक सीमाने द बोउवर की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' (१९४९) ने नारी मुक्ति लहर पूरे वैश्विक धरातल पर फैल गई। दूसरी तरफ फ्रांस के लेस्बियन आंदोलन ने भारतीय परिवेश में स्त्री विमर्श को लेकर बडा गडबड झाला फैलाया। इसी बिंदु पर आकर भारतीय साहित्य खासतौर पर हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श को लेकर अधिक मात्रा में लेखन होने लगा। हिंदी कहानी ने स्त्री–विमर्श से जुडे यथार्थ को बडी व्यापकता के साथ तलाशा है। इस कहानियों में स्त्री, उसके अनेक रूपों, उससे जुडे विविध सरोकरों और समस्याओं को छुआ है।

नारी जीवन की विडंबना यह है कि कभी तो वह पति पर आश्रित है तो कभी पुत्र पर। चारो तरफ से वह बंधनों में जकडी है। इस स्थिती पर अपना विद्रोह व्यक्त करते हुए अमृता प्रीतम कहती है कि ''क्या यही औरत की जिंदगी का मकसद है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। हर औरत को या तो पति के माध्यम से जीना होता है या बच्चों के माध्यम से।..... नारी जाति की कोई स्वतंत्रता नहीं है। पति के द्वारा लगाए गए बंधनों को वह स्वीकार नहीं करती।''१ बदलते हुए परिवेश में स्त्री–पुरूष संपर्क सहज स्वाभाविक है। तिसरे व्यक्ति का संपर्क जब बडने लगता है तब दाम्पत्य जीवन में दरारे पडने लगती है। कई बार यह संदेह देह में दूरी पैदा करता है आगे देह की दूरी मन की दूरी में बदल जाती है। एक–दूसरे से अलग होने की स्थितीयाँ भी उभरती है। अथवा संन्देह का यह कीड़ा भीतर–ही–भीतर घुटन पैदा कर देता है। मन्नु भंण्डारी की 'तीसरा आदमी' कहानी में इसी समस्या को चित्रित किया है। सतीश और शकुन के जीवन में आलोक नामक तीसरे आदमी के प्रवेश के कारण पति–पत्नी में तनाव निर्माण होता है। सतीश के मन में पत्नी शकुन को लेकर संदेह पैदा होने लगता है। शकुन के परिचित लेखक आलोक जब शकुन से मिलने आते हैं तब सतीश के मन में शकुन–आलोक को लेकर गन्दी शंकाएँ निर्माण होने लगती है। '' उसने स्वयं आलोक के पत्र पढे हैं उनमें उसे कहीं कुछ है ऐसा नहीं लगा, जिससे वह आहत अनुभव करे पर हमेशा उसे लगता है कि लिखे हुए शब्दों से परे भी कुछ जरूर वरना इन शब्दों में ऐसा है ही क्या जो शकुन यों प्रसन्न रहती है?''२

पुरूषी संस्कृती का एक प्रदीर्घ इतिहास है। पुरूषी संस्कृति ने ऐसी मूल्य व्यवस्था की निमिर्ती की है कि स्त्री चाहे जितनी पढी–लिखी हो, घर–परिवार और संतति से संबंधित सारे निर्णय पुरूष ही लिया करता है। इसी पुरूषी सत्ता को शिक्षित हो कर स्त्री चुनौती दे रही है। पर वह इतना सहज नहीं है। परिणाम स्वरूप

Assistant Professor

वह भीतर–ही–भीतर छटपटाहट हो रही है। समकालीन महिला कहानिकारों की कहानियों में उनकी यह छटपटाहट अधिक प्रखरता के साथ व्यक्त हुई है। ममता कालिया, मन्नु भण्डारी और मेहरून्निसा परवेज ने पत्नी की और संदेह की दृष्टि या गुलाम के रूप में देखने वाले पुरुषझरित्र को उभारा है। इसी परंपरा में पूर्णिमा केडिया की 'उन्मुक्ति' कहानी में नायिका कविता के छटपटाहट के माध्यम से व्यक्त किया है। कविता में सच्ची मातृ–भावना भी है। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह पति के पास जाकर रहना स्वीकार कर लेती है। राष्ट्रीय त्योहार के दिन वह सोचती, ''आजादी केवल तिरंगे के एक रंग को मिली है, दूसरा रंग–नारी अभी भी बदरंग है। वह कब आजाद होगी? कब?.........''३

आज समकालीन भारतीय समाज में धीरे–धीरे हर अत्याचार के विरूद्ध नारी की आवाज उठ रही है। उनकी आवाज को मजबूती प्रदान करने में श्यौराज सिंह बेचैन की कहानी 'शोधप्रंबध' बहुत ही सामयिक है। इस कहानी में लेखन ने यह दिखाया है कि नारी आज अपने को कम नहीं समझ रही है। उसमें साहस है तथा अन्याय के विरूद्ध उठ खडे होने की ताकत है। रीना अपने पर अत्याचार करने वाले प्रोफेसर सिंह के विरूद्ध खडी होती है।

समकालीन स्त्री–विमर्श से जुडी कहानी में नारी मुक्ति का प्रयास है। स्त्री–विमर्श में पुरूष के वर्चस्व को चुनौती देना है। ''हमारे समाज ने स्त्री के अस्तित्व को सदैव नकारा है, भले ही आज उसमें हल्कासा परिवर्तन जरूर आया है। अत: स्त्री का मन दबावपूर्ण वातावरण से मुक्त नहीं है। इस अवस्था ने स्त्री की मानसिकता में विद्रोही स्थिती पैदा की है।''४ नारी मन में पुरूषी वर्चस्व के विरूद्ध निर्माण हो रहे इसी विद्रोही स्थिती को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

सारत: कहा जा सकता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था, प्रजातंत्र, उच्च–शिक्षा, विकास और परिवर्तन संबंधी तमाम विमर्शों के बावजूद तथ्य यही है कि अभी भी पुरूष अपनी श्रेष्ठता ओर प्रधानता की ग्रंथि से मुक्त नहीं हो पाया है और समकालीन स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने पर भी पुरूष के इस वर्चस्व जन्य आचरण के सतत् झेलती है। समकालीन हिंदी कहानी में इस विषम भेदभाव को सार्थक ढंग से चित्रित किया है।

संदर्भ :

१) अमृत प्रीतम फ्रायडे से लेकर फ्रिजडेयर, पृष्ठ ४८

Assistant Professor
Sunderrao S... Mahavidyalaya,
Majalgaon Dist. Beed

२) मन्नु भण्डारी– यही सच है और अन्य कहानियाँ पृष्ठ ३०

३) पूर्णिमा केडिया – सारिका पृष्ठ ७७

४) संपा.डॉ.एन.एम.सण्णी– हिंदी कहानी के सौ वर्ष,(लेख– 'स्त्री की एक नई पहचाना' – 'लेडी बॉस' –बी.एस.प्रीति) पृष्ठ १५४

Assistant Professor
Sunderrao Solanke Mahavidyalaya
Majalgaon Dist.Beed.(M.S)